ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 291-295

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

भक्तों पर भगवान की अहैतुकी कृपा

ईश्वर चन्द्र पाण्डेय
प्राचार्य, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी महेन्द्र पी.जी. कालेज, हलधरपुर, मऊ (उ0प्र0) भारत।

Received- 09.08.2020, Revised- 14.08.2020, Accepted - 18.08.2020 E-mail: - drbrajeshkumarpandey@gmail.com

सारांश : सभी भक्तिपरक रचनाओं में चाहे वे संस्कृत–भाषा के पुराण काव्य या अन्य भगवदगुणदर्पण इत्यादि रचनाएँ हो अथवा अन्य भारतीय भाषाओं हिन्दी इत्यादि में विभिन्न भक्तों की भक्तिपरक काव्य रचनाएँ हों, सबमें भगवान की अहैतुकी कृपा करुणा, अनुग्रह, अनुक्रोश, अनुकम्पा दया और प्रसाद पर भक्तों द्वारा अटूट विश्वास और उसकी प्राप्ति के लिए अदम्य, अथक और निरन्तर प्रयास का भाव व्यक्त किया गया है। प्रसिद्ध कोशकार श्वामन शिवराम आप्टे के अनुसार अहैतुकी का एक पर्याय स्वतः स्फूर्त भी है। भगवान की यह भक्ति और भक्त की इस प्रकार भक्ति भावना स्वतः स्फूर्त होती है। भगवान् के द्वारा दिये जाने वाले दण्ड को भी भक्तों ने अनुग्रह के रूप में माना है। वे अनुग्रह को पोषण कहते हैं। भगवत्कथा, भगवत्स्तुति तथा भगवद् गुणगानपरक सभी रचनाओं में भगवान के इस अहैतुक अनुग्रह को प्राप्त करने की कामना निरन्तर व्यक्त की गयी है। श्रीमद्भागवत महापुराण और गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस में भगवान के इस अनुग्रह प्राप्ति की भक्तों द्वारा व्यक्त कामना और भगवान् द्वारा स्वयं की जाने वाली अहैतुकी अनुकम्पा की घोषणा पंक्ति–पंक्ति में मिलती है गोस्वामी तुलसीदास तो यह मानते हैं कि भगवान एक प्रकार से नहीं अपितु सभी प्रकार से अनुग्रह करते हैं। वे भक्त पर सुख की वर्षा कर देते है और भक्त के प्रेम में स्वयं मग्न हो जाते हैं। भरतजी के मुखारविन्द से निकली हुई ये पंक्तियाँ–

कुंजीभूत शब्द– भक्तिपरक, संस्कृत, भगवदगुणदर्पण, रचनाएँ, अहैतुकी, करुणा, अनुग्रह, अनुक्रोश, अनुकम्पा।

निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेह कीन्ह न थोरा। चौ.
किन्ह अनुग्रह अमित अति सबविधि सीता नाथ। दो.

भक्त की ओर से अहैतुकी भक्ति ही वास्तविक भक्ति है। भक्ति वही है जिसका प्रेरक स्वार्थ न हो। किसी भौतिक स्वार्थ से प्रेरित होकर लोभ या मोह की तृप्ति के लिए जो भक्ति होती है उसे भक्ति नहीं कहा जा सकता। श्रीमद्भागवत महापुराण, विष्णुपुराण के अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी सर्वत्र भगवान की ऐसी ही भक्ति को आदर्श बताया गया है जिसमें भक्त किसी भौतिक सुख की कामना नहीं करता। अधिक से अधिक वह भगवान को सविग्रह देखना चाहता है।

आदिभक्त ब्रह्माजी से लेकर आधुनिक युग तक के आदर्श भक्तों ने भगवान से कभी किसी भौतिक सुख की याचना नहीं की है, विशेषकर अपने लिए तो कभी भी नहीं। हाँ, अन्य प्राणियों की पीड़ा और आर्ति हरण की प्रार्थना भगवान से अवश्य की गयी है। ब्रह्माजी ने भगवान के दिये हुए कर्तव्य (सृष्टि रचना) की योग्यता प्राप्त करने के लिए तप और भक्ति की। मनु और शतरूपा ने उनको पुत्र रूप में प्राप्त करने का वर अवश्य मांगा पर भगवान् जैसा पुत्र पाकर उससे किसी प्रकार के भौतिक सुख साधनों को प्राप्त करने की इच्छा के वशीभूत होकर नहीं, अपितु जीवनभर भगवान के असीम सौन्दर्य का निरन्तर दर्शन करते रहने की लालसा मात्र से। अकिंचन सुदामा भगवान के पास पत्नी के बाध्य करने पर ही कुछ याचना करने गया पर उनके समीप जाकर वह उनसे कुछ मांग नहीं सका। यह उसकी अहैतुकी भक्ति का चरमोत्कर्ष हैं।

जिस प्रकार भक्त भगवान के प्रति अहैतुकी भक्ति को परम आदर्श मानता है, उसी प्रकार भगवान की ओर से वह अहैतुकी कृपा की भी कामना रखता है। यह कृपा वह इसलिए नहीं चाहता कि उसे कोई भौतिक सुख प्राप्त हो प्रत्युत इसलिए चाहता है कि उसे यह विश्वास है कि परमात्मा की कृपा के बिना उसके हृदय में भक्ति का अङ्गरण नहीं हो सकता, सभी भगवत्भक्तों ने इस विश्वास को दृढ आस्था का रूप दिया है कि बिना भगवत्कृपा के मनुष्य के हृदय में भक्ति भाव का उद्रेक नहीं हो सकता।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत महापुराण पर भाष्य रचकर जिस पुष्टि मार्ग का प्रवर्तन किया उसका एकमात्र आधार भगवान की अहैतुकी कृपा पर दृढ़ आस्था ही है। हिन्दी के महाकवि महात्मा सूरदास इसी पुष्टिमार्गीय भक्ति के अनुयायी थे। दूसरी ओर हिन्दी के ही महाकवि गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवादी मत से भी श्रीराम भक्ति की प्रेरणा पाते हुए अपनी समग्र रचना में सर्वत्र यही विश्वास अभिव्यक्त करते हैं कि–

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

"कबहुँक करि करुना नर देही देत ईस विनु हेतु सनेही।" वस्तुतः सभी भगवान भक्तों ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है– जीव को अनन्त योनियों कष्ट भोगते हुए देखकर अकारण कृपा करने वाले करुणानिधान प्रभु का ह्रदय पसीज उठता है, तो वे इसे अपनी प्राप्ति करने के लिए स्वर्ण अवसर के रूप में मानव देह प्रदान करते हैं। मनुष्य कितना अज्ञ है कि इस अनुपम शरीर को प्राप्त करते हुए भी इसका दुरुपयोग कर डालता है। सत् चर्चा के समय अनेक लोक यह तर्क भी प्रस्तुत करते हैं कि यह मानव शरीर तो विकासवाद के अनुसार स्वाभाविक रूप से विकसित हुआ। कर्मवाद के अनुयायी यह कहते हैं कि मानव शरीर की प्राप्ति सत्कर्मों का परिणाम है। इसके अतिरिक्त अन्य भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण भी आज के युग में प्रस्तुत किये जाते है, किन्तु सन्तों का कथन है कि मानव शरीर तो प्रभु की अहैतुकी कृपा से मिला करता है। जैसा कि पूर्व अनुच्छेद में उद्धत गोस्वामी तुलसीदास की "अर्द्धाली" से पुष्ट और समर्थित हो रहा है।

उस कृपालु की अहैतुकी कृपा का सही दर्शन उन्हीं भक्तों को होता है, जो भगवत्स्मरण के साथ साथ जगत् के प्रत्येक कार्य को प्रभु की प्रियता के लिए ही करते है। इससे पहले भगवान की वास्तविक कृपा का अनुभव प्रायः हो नहीं पाता, जो लोग शरीर के लिए संसार को अपना समझते हैं, वे प्रारम्भ में ही इतनी बड़ी भूल कर बैठते हैं कि फिर वासना के जाल से निकलना उनके लिए अत्यन्त कठिन हो जाता हैं। सच्ची बात तो यह है कि शरीर संसार की सेवा के लिए मिला है, न कि संसार के भोग के लिए। अतः जो शरीर के लिये संसार को मानते हैं। वे सुख–दुःख के चक्कर में पड़कर कष्ट उठाते है और जो शरीर को संसार के लिए मानते हैं वे संसार के लिए ही उपयोगी सिद्ध होते है और संसार से पार होकर उस प्रभु के लिए भी। अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम किस मार्ग को चुने।

केवल शक्ति बुद्धि के आश्रय से ही उस नित्य प्राप्त भगवत्कृपा का अनुभव करने में समर्थ हो सकते हैं। तर्क द्वारा कदापि नहीं, क्योंकि मानुषी बुद्धि की गति भी निर्दिष्ट सीमा से आगे नहीं हो सकती। "ईश्वरः सर्वभूतानां ह्रद्देशेऽर्जुनतिष्ठति" के अनुसार भगवान सर्वव्यापक है, अतः इनकी कृपा की वर्षा सर्वत्र हो रही है। हम लोगों में से अधिकांश ने तो विषयासक्ति के कारण भगवत्कृपारूपा वर्षा से भयभीत होकर अपने को देहरूप परिच्छिन्न कारागार में बन्द कर लिया है। कुछ लोगों ने धन, धाम, विद्या पद, प्रतिष्ठा के मिथ्याभिमान का लबादा ओढ़कर अपने आपको सब ओर से ढक लिया है, इस कारण वे भगवत्कृपारूपा वर्षा के पवित्र स्नानरूपानन्द को प्राप्त करने से सर्वथा वञ्चित बने रहते हैं। केवल थोड़े से ही व्यक्ति, जो संसार में धधकती हुई त्रितापों की भीषण अग्नि से बचने के इच्छुक है, भगवान् की कृपा की शरण लेते हैं। ऐसे पुरुष भगवान की वाणी में अटूट निष्ठा स्थापित करके भगवान की कृपा से इसी जीवन में आत्मकल्याण के अधिकारी बन जाते हैं–

"तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम।।"

अपने अनुग्रह अथवा अहैतुकी कृपा की मुक्तकण्ठ से घोषणा करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा – "प्रिय उद्धव! यह मनुष्य शरीर समस्त शुभफलों की प्राप्ति का मूल है और अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी अनायास सुलभ हो गया है। इस संसार सागर से पार जाने के लिए यह एक सुदृढ़ नौका है। शरण ग्रहण मात्र से ही गुरुदेव इसके केवट बनकर पतवार संचालन करने लगते हैं और स्मरण करने मात्र से ही मैं अनुकूल वायु के रूप में इसे लक्ष्य की ओर बढ़ाने लगता हूँ। इतनी सुविधा होने पर भी जो इस शरीर के द्वारा संसार सागर से पार नहीं हो जाता वह तो अपने हाथों अपने आत्मा का हनन कर रहा है। यह भगवान् का सबसे बड़ा अनुग्रह है कि उन्होंने किसी जीवात्मा को मानव शरीर प्रदान किया, क्योंकि इसी शरीर को पाकर जीवात्मा बुद्धि, तर्क, श्रद्धा, भक्ति, भावना इत्यादि मानसिक शक्तियों से अधिकतम सम्पन्न होता है और वह भगवान के अनुग्रह को अवगत करता है और स्वयं भी निःस्वार्थ भाव से अहैतुकी भक्ति को ग्रहण करता है जिससे प्रेरित होकर वह भगवान की सेवा से ही प्राणिमात्र की सेवा में प्रवृत्त होता है, जो कि अहैतुकी भक्ति का श्रेष्ठतम उदाहरण है।

श्रीमद्भागवत महापुराण में आदि से अन्त तक स्वयं भगवान के द्वारा अथवा उनकी स्तुतिकर्ता भक्तों के द्वारा भगवान के इस अनुग्रह, करुणा, दया, अथवा अहैतुकी कृपा की घोषणा हुई है। न तो कोई भक्त इसे भूलता है और न भगवान उसे भूलने देते हैं।

भगवान द्वारा भक्तों के प्रति की जाने वाली अहैतुकी कृपा ही भक्तों की भक्ति साधना के कठिन मार्ग का सम्बल है। उसी पर विश्वास करता हुआ भक्त अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। ब्रह्मा जी भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं– भगवान आप एक हैं तथा सम्पूर्ण लोक के अन्तःकरण में स्थित उसके परमहितकारी अन्तरात्मा हैं इसलिए यदि देवता लोग भी ह्रदय में तरह–तरह की कामना रखकर भाँति–भाँति की विपुल सामग्रियों से पूजन करते हैं, तो उससे आप उतने प्रसन्न नहीं होते जितने सब प्राणियों पर कृपा करने से होते हैं, किन्तु वह सर्वभूत दया असत् पुरुषों को अत्यन्त दुर्लभ है।

भगवन् आपका मार्ग केवल गुण श्रवण से ही जाना जाता है। आप निश्चय ही मनुष्यों के भक्ति योग के

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

द्वारा परिशुद्ध हुए ह्रदय कमल में निवास करते है। पुण्य श्लोक प्रभो! टापके भक्तजन जिस–जिस भावना से आपका चिन्तन करते हैं, उन साधु पुरुषों पर अनुग्रह करने के लिए आप वही रूप धारण कर लेते हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रधान वक्ता महाभागवत शुकदेव जी परीक्षित के अनुरोध पर कथा का आरम्भ करते हुए कहते हैं कि वे ही भगवान् ज्ञानियों के आत्मा है, भक्तों के स्वामी हैं, कर्मकाण्डियों के लिए वेदमूर्ति हैं, और तपस्वियों के लिए तपस्वरूप हैं। ब्रह्मा, शङ्कर आदि बड़े–बड़े देवता भी अपने शुद्ध ह्रदय से उनके स्वरूप का चिन्तन करते और आश्चर्यचकित होकर देखते रहते हैं। वे मुझ पर अपने अनुग्रह–प्रसाद की वर्षा करें।

अन्यत्र भगवान की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं– हे स्वयंप्रकाश परमात्मन् ! आपका यह श्रीविग्रह भक्तजनों की लालसा पूर्ण करने वाला है। मुझपर आपकी चिन्मयी इच्छा का मूर्तिमान स्वरूप आपका कृपा प्रसाद है। मुझे अनुगृहीत करने के लिए ही आपने इसे प्रकट किया है। कौन कहता है कि यह पञ्चभूतों की रचना है? यह अपाकृत शुद्ध सत्त्वमय है। मैं या अन्य कोई समाधि लगाकर भी आपके इस सच्चिदानन्द विग्रह की महिमा नहीं जान सकता, आत्मानन्दानुभव स्वरूप साक्षात् आपकी महिमा को कैसे जान सकता है? –

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य, स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महित्ववसितुं मनसान्तरेण, साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः।।

अभिप्राय यह है कि प्रभु की .पा ही उनके अनुग्रहमय श्रीविग्रह का दर्शन कराने की निमित्त है। सच्चिदानन्दघन, परमसुखपूर्णदयामय, कृपा मूर्ति का चिन्तन कर जिसका मन निर्मल हो जाता है इस तरह के प्राणी को भगवान अपना लेते हैं। उसे सर्वस्वदान कर आत्मस्वरूप प्रदान करते है। विष्णु पुराण में भी सर्वत्र भगवान की अनुग्रह की कामना और उसकी प्राप्ति पर प्रसन्नता व्यक्त की गयी है–

त्वामार्ताः शरणं विष्णोप्रयाता दैत्यनिर्जिताः।
वयं प्रसीद सर्वात्मंस्तेज समाप्याययस्व नः ।।

"विष्णो! दैत्यों से पराजित हुए हम लोग आर्त होकर आपकी शरण आये हैं। सर्वात्मन ! आप प्रसन्न होइये और अपने तेज से हमें शक्तिशाली बनाना। विष्णुपुराण के प्रथम अंश के ही चौथे अध्याय में भगवान द्वारा पृथिवी का उद्धार हो जाने पर सनन्दनादि ऋषियों ने जो स्तुति की है उसमें भगवान के प्रसाद अर्थात् अनुग्रह का बारम्बार उल्लेख है– हे प्रभो! आपका तुण्ड (थुथनी) स्रुवा है, साम स्वर धीर गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमानगृह) शरीर हैं, तथा सत्र शरीर की सन्धियाँ हैं। हे देव! इष्ट (श्रौत) और पूर्त (स्मार्त) धर्म आपके कान हैं। हे नित्यस्वरूप भगवन प्रसन्न होइये। भगवान की यही प्रसन्नता अनुग्रह है।

भगवान विष्णु को भक्तों पर अपार अनुग्रह करने वाला बताते हुए सोमजी ने उनकी इस प्रकार स्तुति की है–

पारं परं विष्णुरपार पारः परः परेभ्यः परमार्थरूपी।
स ब्रह्मपारः परपारभूतः परः पराणां पारपारि।।55।।

हे राजकुमारों! वह मन्त्र इस प्रकार है– श्री विष्णु भगवान संसार मार्ग की अन्तिम अवधि है, उनका पार पाना कठिन है। वे पर (आकाशादि) से परे अर्थात् आनन्द है, अतः सत्यस्वरूप है, तपोनिष्ठ महात्माओं को ही प्राप्त हो सकते है, क्योंकि पर (अनात्म प्रपञ्च) से परे हैं तथा पर (इन्द्रियों) के अगोचर परमात्मा हैं और (भक्तों के) पालक एवम् (उनके अभीष्ट को) पूर्ण करने वाले हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के उन्तीसवें अध्याय में भगवान कपिल ने माता देवहूति के प्रश्नों के उत्तर में अहैतुकी भक्ति का जो स्वरूप प्रस्तुत किया. वह इस प्रकार है–

मद्गुण श्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिर विच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ।।11।।
लक्षणं भक्ति योगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे।। 1211

जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मन की गति का तैल धारावत अविच्छिन्नरूप से मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना– अहैतुकी भक्ति तथा निर्गुण भक्ति योग का लक्षण कहा गया है।

यह अहैतुकी निष्कामा भक्ति ही सच्चा प्रेम है, जिस पुरुष की मनोगति आराध्य के गुण श्रवणमात्र से फलानुसन्धानरहित तथा भेद दर्शन विहीन होकर सर्वान्तर्यामी परमात्मा में अविच्छिन्नभाव से निहित होती है, वह मनोगतरूपा भक्ति ही अहैतुकी भक्ति का स्वरूप है, इसको प्राप्त कर लेने पर साधक भगवत सेवा छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहता यहाँ तक कि परमपुरुषार्थ अर्थात मुक्ति की भी कामना उसके मन में नहीं रह जाती। इस प्रसङ्ग में श्रीमद्भागवत में आगे कहा गया है–

सालोक्यसार्श्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीय मानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।। 13।।

ऐसा निष्काम भक्त, दिये जाने पर, मेरी सेवा छोड़कर सालोक्य सार्श्टि, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक नहीं लेते। देवहूति के प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वयं कपिल ने यह भाव व्यक्त किया है कि– अहैतुकी भक्तिभाव सम्पन्न भक्त उस भक्ति को इतनी मूल्यवती समझता है कि उसे

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

पाँचों प्रकार की मुक्ति, सालोक्य (अर्थात् ईश्यवर के समान ऐश्वर्य सम्पन्नता), सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य को उसे अपनी भक्ति भावना की तुलना में अत्यन्त तुच्छ मानता है और निरन्तर भगवत्सेवा में लगे रहना ही उसे सर्वाधिक आनन्द प्रदान करता है।

जब साधक भक्त भक्ति के इस उच्च सोपान में आरोहण करता है, तब वह सर्वभूतों के साथ एकात्मता का अनुभव करता है। भगवान ही सब जीवों के आत्मरूप होकर विराजमान है, वह साधक शत्रु–मित्र आदि किसी प्रकार का भेदभाव किसी के साथ नहीं रखता, सर्वोसम भक्त है जिस पर भगवान अहैतुकी कृपा करते हैं, उसका लक्षणवर्णन करते हुए श्रीमद्भागवत महापुराण कहता है– "जो सर्वभूतों में आत्मा रूपी भगवान का सदैव दर्शन करता है तथा आत्मा रूपी भगवान के भीतर सर्वभूतों को देखता है, वही श्रेष्ठ भागवत है। ऐसे भक्त पर ही मेरी अहैतुकी कृपा होती है। जिसका धन आदि के विषय में अपने पराये का भेद भाव नहीं है समस्त भूतों में जिसका समान भाव है, जिसकी इन्दियाँ और मन संयत है, वही श्रेष्ट भक्त मेरी कृपा का पात्र है। सूतजी ने अहैतुकी भक्ति की प्रशंसा करते हुए ऋषियों को इस प्रकार समझाया है–

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति।।।

मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर वनी रहे। ऐसी भक्ति से ह्रदय आनन्द स्वरूप परमात्मा की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है। सूतजी ही अन्यत्र कहते हैं–

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरूक्रमे।
कुर्वत्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः।।

जो लोग ज्ञानी हैं जिनकी अविद्या की गाँठ खुल गयी है और सदा आत्मा में रमण करने वाले हैं, वे भगवान की हेतु रहित भक्ति किया करते हैं, क्योंकि भगवान के गुण ही ऐसे मधुर हैं, जो सबको अपनी ओर खींच लेते हैं।

भक्तों ने भगवान को विभिन्न अवतारों में जिस–जिस रूप में देखा वे सभी रूप प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिए भगवान के द्वारा धारण किये गये। यह विश्वास श्रीमद्भागवत महापुराण में भक्तों द्वारा सर्वत्र व्यक्त किया गया है। महामुनि शुकदेव जी श्रीमद्भागवत के निम्न श्लोक में उसे व्यक्त करते है

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते ता.शीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत।।37।।

भगवान जीवों पर कृपा करने लिए ही अपने को मनुष्य रूप में प्रकट करते हैं और ऐसी लीलाएं करते हैं जिन्हें सुनकर भक्त भगवत्परायण हो जाय।

श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

हे अर्जुन! जब भी सृष्टि धर्म की मर्यादा में कोई व्यतिक्रम होता है और अधर्म बढ़ता है तब मैं मृत्युलोक में मर्त्य शरीर धारण कर अवतरित होता हूँ और ऐसा विभिन्न युगों में करता रहा हूँ और इस प्रकार दुष्टों का विनाश सज्जनों की रक्षा और धर्म की स्थापना करता हूँ।

विष्णु पुराण में भी प्रमुख भक्त प्रहलाद भगवान से अनुग्रह की कामना करता है और अपने सहपाठी दैत्य बालकों के ह्रदय में भक्ति भावना की स्थापना करने के लिए उन्हें भगवान के अनुग्रह के प्रति दृढ़ आस्थावान् बनाना चाहता है "उन अच्युत के प्रसन्न होने पर संसार में दुर्लभ ही क्या है? तुम अर्थ, धर्म, काम की इच्छा कभी न करना वे अत्यन्त तुच्छ हैं। उस महावृक्ष का आश्रय लेने पर तो तुम निःसन्देह मोक्ष रूप महात्म्य प्राप्त कर लोगे।"

भक्त प्रवर गोस्वामी तुलसीदास शायद ही एक कदम भगवान् के अहैतुक अनुग्रह के बिना चल पाते हैं उनकी समग्र रचनाओं में यत्र–तत्र नहीं अपितु सर्वत्र भगवान् अहैतुकी की .पा की कामना, याचना, स्तुति एवं प्रशंसा की गयी है। विनयपत्रिका तो इस अनुग्रह कामना के लिए भगवान के समक्ष प्रस्तुत पत्रावली ही है। श्रीरामचरितमानस की पूरी कथा में प्रत्येक दोह के पश्चात् भगवान् के इस अनुग्रह, प्रसाद और अहैतुकी कृपा की चाहत और याचना मिलती है, और साथ ही यह विश्वास भी मिलता है कि भगवान् सबसे बड़े दानी हैं, अकारण दानी है और सबसे बड़ी बात है कि वे एहसान फरामोश नहीं है, कृतघ्न नहीं हैं। युद्ध में लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर वे जहाँ यह कहकर "मेरो सब पुरुषारथ थाको" अनुज के प्रति अपना अगाध स्नेह व्यक्त करते हैं वही उसके साथ ही यह भी कहते हैं कहा कि "ह्वैहे कहा विभीषन की गति। यही सोच भरी छाती", विभीषण को दिये हुए अभयदान और किये हुए तिलक की आपूर्ति में बाधा की स्थिति में अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त करते हैं।

गोस्वामी जी ने श्रीरामचरितमानस के मंगलाचरण में जैसा उद्घोष किया है उसके अनुसार वे श्रीमद्भागवत गीतोपनिषद् और श्रीमद्भागवत महापुराण में भगवान द्वारा व्यक्त अपने अनुग्रह की सार्वभौमिकता, सार्वजनिकता और सार्वकालिकता को भूलते नहीं है और लिखते हैं–

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

जब जब होइ धरम कै हानी, बाढ़हि असुर अधम अभिमानी
करहि अनीति जाइ नहि बरनी सीदहि विप्र धेनु सुरधरनी।।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा हरहिं .पानिधि सज्जन पीरा।।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसा वोजः सहः सत्वबलेन्द्रियात्मा।
स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः।। श्रीमदभागवत.. 7/8/9.
2. न केवलं तात मम प्रजानां स ब्रह्मभूतो भवतश्च विष्णुः।
धाता विधाता परमेश्वरश्च प्रसीदकोपं कुरुषे किमर्थम।। वि पु.. 1/17/24.
3. भयं भया नामपहारिणिस्थितेमनस्य नन्ते ममकुत्रतिष्ठ।
यस्मिन्स्मृते जन्मजरान्तकादि भयानि सर्वाण्यपयान्तितात।। वि.पु. 1/17/36
4. वामन शिवराम आप्टे, संस्त–शब्दकोष, पृ. 134
5. स्थितिर्वैकुंठ विजयः पोषणं तदनुग्रहः।
मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः।।
श्रीमदभागवत., 2/10/4.
6. सत्याशिषोहि भगवंस्तव पादपद्यमाशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्ते।
अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान् वाश्रेव वत्सक मनु ग्रहकातरोऽस्मान।। श्रीमद्भागवत... 4/9/17.
7. रा.च.मा., 2/265/4, 266.
8. श्रीमद्भागवत., 3/9/1–25.
वि.पु. 1/9/40–57.
9. दानि सिरोमनि .पानिधि नाथ कहँ सतिभाउ।
चाहउँ तुमहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ।।
रा.च.मा.. बा.का.. 149.
10. श्रीमद्भागवत.., 10/80/81.1.
11. रा.च.मा., उ.का.43/3.
12. जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं,
तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विज त्वम।
यस्तन्न पालयति लालयतीन्द्रियाणि,
तस्मृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात।। गरुड पु. 9/22.
13. श्रीमद्भागवत गीता. 18/61
14. तदेव, 18/62.
15. नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।। श्रीमद्भागवत. ,11/20/17.
16. नाति प्रसीदति तथोपचितोपचारै–
रराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः।
यत्सर्वभूत दययासदलभ्ययैको,
नाना जने श्ववहितः सुह्रदन्तरात्मा।। श्रीमद्भागवत. 3/9/12.
17. त्वं भावयोग परिभाषित ह्रत्सरोज अस्सेश्रुतेक्षितपथो ननुनाथ पुंसाम।
यद्यद्धिया त उरुगयविभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे मदनुग्रहाय।। श्रीमद्भागवत..3/9/11.
18. स एष आत्माऽऽत्मवताम धीश्वर–
स्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः।
गतव्यलीकैरजशङ्करादिभिः
र्वितर्क्यलिङ्गो भगवानप्रसीदताम।। श्रीमदभागवत. .2/4/19,
19. श्रीमद्भागवत.. 10/14/2.
20. वि.पु.. 1/9/72.
21. सुकतुण्ड साम स्वरधीर नाद
प्राग्वंशकाया खिल सत्र सन्धे।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव
सनातनात्मन्भगवन्प्रसीद।। वि.पु., 1/4/34
22. वि पु.. 1/15/55
23. 3/29/11–12
24. तत्रैव, 3/29/13.
25. सर्वभतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागतोत्तमः ।।45।।
श्रीमद्भागवत. 11/2/45,
26. न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्णात्मनि वा भिदा।
सर्वभूत समः शान्तः स वै भागवोत्तम ।।
श्रीमद्भागवत 11/2/52
27. श्रीमद्भागवत.. 1/2/6.
28. श्रीमद्भागवत.. 1/7/10.
29. श्रीमद्भागवत.. 10/33/37.
30. श्रीमद्भगवद्गीता 4/7–8
31. तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्य लभ्यं
धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते।
समाश्रिताद्ब्रह्मातरोरनन्ता
निःसंशयं प्राप्स्यथ वै महत्फलम।। वि.पु., 1/17/91.
32. गीतावली, गोस्वामी तुलसीदास, लक्ष्मण मूर्च्छा, 1–3, पृ. 309–10.

*****

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*